ARYAVART SHODH VIKASH PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO. 253-256
ISSN NO.-2347-2944
Vol.-7, No.-I, Issues-VIII YEAR- June-2017

भारत में चतुर्थ व पंचवर्षीय योजना के समय रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की मौद्रिक नीति

अनलेश कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर व विभागाध्यक्ष अर्थशास्त्र विभाग, नेशनल पी.जी. कालेज, भोगाँव–मैनपुरी, (उ0प्र0), भारत

प्रस्तावना– भारतीय मौद्रिक नीति के निर्धारण में इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि वह स्थिरता को बनाये हुए आर्थिक विकास के उद्देश्य को प्राप्त कर सके। पिछली दशाब्दी में रिजर्व बैंक ने उन सब शास्त्रों को प्रयोग किया है जो एक बैंकिंग सत्ता को प्राप्त होते हैं जैसे गुणात्मक (Qualitative), परिमाणात्मक (Quantitative) नियन्त्रण एवं नैतिक अनुनय (Moral Suation), का प्रयोग किया है। यह अवश्य है कि किसी विशेष अवधि में जैसी परिस्थिति रही हों, उनके अनुसार किसी विशेष शस्त्र के प्रयोग पर अधिक बल दिया गया हो। उदाहरण के लिए 1960–61 में परिवर्तनशील नकद कोषानुपात (Variable Cash Reserve Ratio) के प्रयोग पर अधिक बल दिया गया। इसके बाद इसका उपयोग नहीं किया गया। सितम्बर 1962 में रिजर्व बैंक अधिनियम एवं बैंकिंग कम्पनी अधिनियम में संशोधन किये गये ताकि परिवर्तनशील नकद कोषानुपात की व्यवस्था प्रभावपूर्ण रीति से कार्य कर सके। इस संशोधन के अनुसार नकद कोषानुपात को तरल कोषानुपात से पृथक कर दिया गया ताकि ऊँचे नकद कोषानुपात की आवश्यकता नीचे गैर–नकद तरल पावनाओं (Non-cash Liquid Assets) से प्रभावहीन न हो जाय, क्योंकि ऐसा 1960–61 में हो चुका था।

परिवर्तनशील नकद कोषानुपात– इससे पूर्व रिजव्र बैंक अधिनियम की धारा 42 (1) के अधीन प्रत्येक अनुसूचित बैंक को अपनी मांग जमा (Demand Deposits) का 5 प्रतिशत और स्थाई जमा (Fixed or Time Deposits) का 2 प्रतिशत रिजर्व बैंक में जमा करना पड़ता था, परन्तु यह रीति बड़ी स्थूल अनुभव की गई क्योंकि रिजर्व बैंक को इनमें कमी या वृद्धि करने का अधिकार नहीं था, यह अवस्था परिवर्तनशील न रहकर स्थाई कोषानुपात व्यवस्था बन गई, 6 अक्टूबर 1956 को रिजर्व बैंक अधिनियम में संशोधन करके रिजर्व बैंक को अधिकार दिया गया कि वह स्थाई जमा की 2 प्रतिशत को 8 प्रतिशत और मांग जमा की 5 प्रतिशत को 20 प्रतिशत तक बढ़ा सकता है। स्थाई तथा मांग जमा के क्रमशः 2 तथा 5 प्रतिशत से अधिक राशि जमा करवाने पर रिजर्व बैंक यदि चाहे तो ब्याज दे सकता है, परन्तु इस व्यवस्था को व्यवहार में लाने के लिए एक विशेष कठिनाई का अनुभव हुआ। भारतीय बैंकों में जमा तीन खातों में रक्खी जाती है, जमा खाता अथवा चालू खाता, बचत एवं स्थायी खाता। बचत खाने को मांग (अथवा स्थाई) खाते में सम्मिलित किया जाता था, क्योंकि यह अधिकार बैंकों के हाथ में था। वह बचत खाते का अधिकांश भाग स्थाई खाते में दिखलाते थे ताँकि उन्हें रिजर्व बैंक के पास कम नकद कोष जमा करना पड़े। इस दोष को दूर करने के लिए रिजर्व बैंक अधिनियम में 15 सितम्बर 1962 में पुनः संशोधन करना पड़ा जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक अनुसूचित बैंक को अपने कुल जमाओं का 3 प्रतिशत रिजर्व बैंक में जमा करना अनिवार्य हो गया, परन्तु यह राशि किसी बैंक की कुल जमा के 15 प्रतिशत से अधिक कदापि नहीं होगी। अक्टूबर 1974 की नीति के अन्तर्गत मांग तथा समय दायित्वों (Demand and time Liabilities) का 5 प्रतिशत भाग जो अब तक रिजर्व बैंक के पास जमा करना पड़ता था घटाकर 4 प्रतिशत कर दिया गया है। इस परिवर्तन के फलस्वरूप बैंकों को 120 करोड़ रु0 की अतिरिक्त राशि विकास के कार्यक्रमों के लिए उपलब्ध हो सकेगी।

खुले बाजार की क्रियायें– खुले बाजार की क्रियायें साख नियमन का, विशेषतः बैंकों के कोषों के मौसमी परिवर्तनों (Seasonal Variations) को दूर करने के लिए, एक लोचपूर्ण शस्त्र माना जाता है। इस शस्त्र के प्रभावोंत्पादक प्रयोग के लिए सरकारी प्रतिभूतियों एवं अनुमोदन प्रतिभूतियों (Approved Securities) के एक विस्तृत एवं सक्रिय बाजार की आवश्यकता होती है। इस दिश ामें सरकार या केन्द्रीय बैंक कुद करना चाहे तो कर सकता है। परन्तु हमारे यहाँ बैंकों को ऊँची तरलता अनुपात (High Liquidity Ratio) को बनाये रखने के वैधानिक प्रबन्ध, उनके सरकारी प्रतिभूतियों के क्रय–विक्रय में, बाधायें उपस्थित करते हैं। एक सक्रिय प्रतिभूति बाजार के लिए प्रतिभूतियों का निरन्तर क्रय और विक्रय बहुत आवश्यक होता है, वह भी यहाँ सम्भव नहीं हो पाता। उसका कारण यह है कि जीवन बीमा निगम संस्थागत विनियोगियों (Institutional Investors) में सबसे बड़ विनियोगी है। विनियोग की बड़ी राशि रखने के कारण यह प्रतिभूति बाजार को पूर्णरूप से नियन्त्रित करता है, प्रतिभूति बाजार के संकीर्ण होते हुए भी, खुले बाजार की क्रियायें, उपयोगी कार्य कर सकती हैं– विशेषतः सामयिक साख की मांग को पूरा करने के लिए।

मुद्रा की मांग व पूर्ति में सम्बन्ध– मुद्रा की मांग व पूर्ति में समन्वय मौद्रिक नीति की परीक्षा मानी जाती है। दोनों के बीच असन्तुलन मूल्य–स्तर के रूप में प्रकट होता है। विकासशील अर्थव्यवस्था में एक तरफ अमौद्रिक क्षेत्र का मौद्रिकरण, औद्योगिक व कृषि क्षेत्र के विस्तार आदि कारणों से मुद्रा मांग बढ़ती है। इसे देखते हुए मुद्रा की पूर्ति बढ़ाई जाती है। यदि मांग व पूर्ति में सामंजस्य स्थापित हो जाता है तो मूल्य स्थिर रहते हैं। यदि पूर्ति मांग से अधिक होती है तो मूल्य

अनुरूपी लेखक

ASVS Society Reg. No. 561/2013-14

स्तर बढ़ जाता है तथा यदि पूर्ति मांग से कम होती है तो मूल्य स्तर घट जाता है। स्पष्टतः यहाँ आकर हमार मौद्रिक नीति पूर्णतः असफल हो जाती है, क्योंकि भारत में मुद्रा की पूर्ति मांग से कहीं अधिक तेज गति से बढ़ी है फलस्वरूप मूल्य स्तर में दौड़ती हुई मूल्य वृद्धि का दौर आ चुका है। यदि वर्तमान असमन्वय अपनी पूर्ववत गति से निरन्तर बढ़ता रहा तो वह समय दूर नहीं है जब दौड़ती हुई वृद्धि उड़ती हुई मूल्य वृद्धि का रूप धारण कर लेगी।

भारत में प्रथम योजनाकाल में मुद्रा पूर्ति 13 प्रतिशत, द्वितीय योजना में 30 प्रतिशत व तीसरी योजना में 61.8 प्रतिशत बढ़ी जबकि मूल्य स्तर–22 प्रतिशत, + 30 प्रतिशत तथा + 36.5 प्रतिशत बढ़ा। 1966 मार्च के अन्त में बाजार में 2866 करोड़ रुपये के नोट थे, जबकि जून 1971, जून 1972 तथा जून 1963 के आखरी सप्ताहों में क्रमशः 4,449 करोड़ रुपये, 4606 करोड़ रुपये तथा 5740 करोड़ रुपये के नोट बाजार में फैले थे।

एक तरफ मुद्रा की पूर्ति तेजी से बढ़ती गई। दूसरी तरफ उत्पादन धीमा व अनियमित गति से बढ़ा, जिसके फलस्वरूप मूल्य स्तर में तेजी से वृद्धि हुई। 1951 में सामान्य मूल्य स्तर (1960=100) 84 था जो 1961 में 101 हो गया। यहीं सूचांक 1970 व 1971 में क्रमशः 184 व 163 पाया गया, 1972 में इस सूचांक में 17 की वृद्धि हुई। 1973 के प्रारम्भ में यह सूचांक 213 था। फरवरी में अतः दो महीने बाद यह 221 हो गया तथा जुलाई 1973 में 243 पाया गया अर्थात् 7 महीनों में 33 अंकों की वृद्धि हुई, जबकि 1960–70 दशक में वृद्धि की दर 9.0 अंक प्रति वर्ष थी। इसी अनुमान पर दिसम्बर 1973 में यह सूचांक 267 हो जायेगा जो स्थिति की भयानकता व मौद्रिक नीति की गम्भीर असफलता की सूचक है भले ही मूल्य वृद्धि का कारण कुछ और भी हो।

साख नियन्त्रण– साख नियन्त्रण मौद्रिक नीति का एक और महत्वपूर्ण अंग है। सामान्यतः साख नियन्त्रण दो प्रकार होता है– **1. मात्रात्मक साख नियन्त्रण, 2. गुणात्मक साख नियन्त्रण**

भारत में प्रारम्भ में कुछ मात्रात्मक साख नियन्त्रण लागू किये गये परन्तु उसके पश्चात गुणात्मक साख नियन्त्रण का ही सहारा लिया जाने लगा, क्योंकि यह अधिक प्रभावी ढ़ंग से व कुशलता से क्रियान्वित किया जा सकता है। अलग–अलग समय पर भिन्न–भिन्न काल के लिए रिजर्व बैंक के गुणात्मक साख नियन्त्रण लागू कर आर्थिक गतिविधियों का सफल संचालन किया है।

भारत में साख नियन्त्रण का प्रमुख लक्ष्य सट्टेबाजी व जमाखोरी को रोकना ही रहा है। अनेकों बार रिजर्व बैंक ने गेहूं तिलहन, मक्का, चावल, तेल, वनस्पति, मूंगफली आदि खाद्यान्नों पर एक निश्चित काल के लिए साख नियन्त्रण लागू करके इनके द्वारा सट्टे का समाप्त करने का प्रयास किया है परन्तु कुल मिलाकर इस क्षेत्र में कभी भी अपेक्षित सफलता नहीं मिल पाई, परन्तु यह मौद्रिक नीति की असफलता का संकेत नहीं माना जा सकता क्योंकि, इसका कारण अर्थव्यवस्था का अर्धविकसित होना व अनुभव का अभाव है। अब इसे दूर किये जाने के प्रयास चल रहे हैं।

युद्ध के समय साख नियन्त्रण के माध्यम से साधनों को रक्षात्मक उद्योगों की ओर गतिशील किये गये। औद्योगिक उत्पादन में लगातार वृद्धि के प्रयास में भी साख नियन्त्रण का महत्वपूर्ण योगदान रहा, परन्तु अमौद्रिक क्षेत्र की व्यापकता, नैतिक संबल का अभाव, अर्थव्यवस्था का पिछड़ापन आदि उन महत्वपूर्ण कारणों में रहे, जिन्होंने साख नियन्त्रण के प्रभाव को सीमित कर लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में बाधा उत्पन्न की।

ब्याज दर– भारत में ब्याज की दर का भी सक्रिय प्रयोग किया गया है। 1962 से 1965 के बीच बैंक दर में तीन बार वृद्धि की गई। 2 जनवरी 1962 को बैंक दर 4 से 4.5 प्रतिशत कर दी गई है। 25 सितम्बर 1964 को इसको बढ़ाकर 5 प्रतिशत किया गया। 17 जनवरी 1965 को यह दर 5 प्रतिशत से बढ़ाकर 6 प्रतिशत कर दी गई। बैंक दर के ऊँचा करने के तीन कारण थे–प्रथम, विकास योजनाओं के दबाव के कारण द्वितीय चीनी आक्रमण के कारण मुद्रा–प्रसार बहुत अधिक हो चुका था, उसको नियन्त्रित करने के लिए बैंक दर में वृद्धि करना आवश्यक समझा गया। तृतीय बाजारू ब्याज की दरें बहुत ऊँची थी।

बैंक दर को उनके समीप लाने के लिए उसे बढ़ाना उचित समझा गया। परन्तु हाल में उत्पन्न हुई मन्दी की प्रवृत्ति को रोकने के लिए Priority Sector अर्थात् कृषि एवं लघु उद्योगों को कम ब्याज की दर पर वित्तीय सहायता प्रदान करना आवश्यक समझा गया। ऐसी उदार नीति को अपनाने के लिए 2 मार्च 1968 को बैंक दर 6 प्रतिशत से घटाकर 5 प्रतिशत कर दी गई।

1969 के अन्त से जनवरी 1974 के मध्य तक मुद्रा की पूर्ति 70 प्रतिशत से बढ़ी, थोक मूल्य 60 प्रतिशत तथा खाद्यान्न के मूल्य 62 प्रतिशत से बढ़े। इस अवधि में साख का विस्तार 87 प्रतिशत से बढ़ा। इस असन्तोषजनक स्थिति को नियन्त्रित करने के लिए फरवरी 1970 में बैंक दर पुनः 6 प्रतिशत कर दी गई। मई 1973 में इसमें पुनः वृद्धि की गई। वर्तमान में यह ब्याज दर 7 प्रतिशत है, परन्तु सदस्य बैंकों को रिजर्व बैंक से उधार ली गई राशि पर दण्ड स्वरूप दरों (Penalty Rates)

ASVS Society Reg. No. 561/2013-14

के कारण औसतन अधिक ब्याज देना पड़ा। अक्टूबर 1960 से सितम्बर 1964 दण्ड स्वरूप दरों के लागू करने का आधार इस प्रकार रहा; रिजर्व बैंक अधिनियम की 42वीं धारा के अनुसार प्रत्येक सदस्य बैंक को रिजर्व बैंक के पास वैधानिक कोष (Statutory Reserves) रखने होते थे। इन कोषों के आधार पर प्रत्येक बैंक जो राशि रिजर्व बैंक से उधार ले सकता था उसका कोटा निर्धारित कर दिया जाता था। इस कोटे की राशि बैंक दर पर उधार ली जा सकती थी। इसके उपरान्त उधार ली जाने वाली राशि को श्रेणियों (Slabs) में विभक्त कर दिया गया ऊँची दरें निर्धारित कर दी गई। उदाहरण के लिए अक्टूबर 1960 में वैधानिक कोष के 50 प्रतिशत तक उधार ली जाने वाली राशि

बैंक दर पर दी जाती थी, जो उस समय 4 प्रतिशत थी। उससे ऊपर (परन्तु वैधानिक कोष से अधिक नहीं) की राशि पर 1 प्रतिशत की दण्ड राशि बैंक दर के अतिरिक्त और देनी पड़ती थी, अर्थात् कुल 5 प्रतिशत का ब्याज देना होता था। उधार ली जाने वाली राशि यदि वैधानिक कोष के 100 प्रतिशत से अधिक होती थी, तो उस पर ब्याज की दर 6 प्रतिशत होती थी। जुलाई 1962 में इस व्यवस्था में और कठोरता लाई गई। बैंक दर पर उधार दी जाने वाली राशि वैधानिक कोष के 50 प्रतिशत से घटाकर 25 प्रतिशत कर दी गई। अगले शेष 25 प्रतिशत पर ब्याज की दर 5 प्रतिशत तय की गई। कोष के 50 और 100 प्रतिशत के बीच लिए गए ऋण पर 6 प्रतिशत ब्याज निर्धारित किया गया। ऋण की राशि 100 प्रतिशत से अधिक होने पर ब्याज 612 प्रतिशत लिया जाता था, इस व्यवस्था में अक्टूबर 1962, जनवरी 1963, अक्टूबर 1963 और मार्च 1964 में फिर परिवर्तन किए गए।

विशुद्ध तरल कोषानुपात की व्यवस्था– उपर्युक्त कोटा–श्रेणी व्यवस्था (Quota-cum-Slab System) सितम्बर 1964 में समाप्त कर दी गई और उसका प्रतिस्थापन विभेदक ब्याज की दरों से कर दिया गया। यह ब्याज की दर सदस्य बैंक की विशुद्ध तरल कोषानुपात की स्थिति के साथ बदलती थी। विशुद्ध तरल कोषानुपात का आशय निम्न रूप में लिया गया। (बैंकों की रिजर्व बैंक के पास नकद राशि+अन्य बैंकों के पास चालू खाते में जमा+अनुमोदित प्रतिभूतियों में विनियोग)–(रिजर्व बैंक, स्टेट बैंक एवं औद्योगिक विकास बैंक से लिए दिये गये ऋण)। साख नियन्त्रण के उद्देश्य से विशुद्ध तरल कोषानुपात (NRL) 28 प्रतिशत न्यूनतम तय किया गया। इस आधार पर ऋण बैंक दर पर लिया जा सकता था, इस अनुपात में प्रत्येक प्रतिशत में कमी आने पर कुल ऋण की राशि पर ब्याज की दर 12 प्रतिशत से बढ़ जाती थी। सितम्बर 1965 में इसको बढ़ाकर 1 प्रतिशत कर दिया गया। NRL व्यवस्था को और अधिक कठोर बनाने के लिए फरवरी 1965 में बैंक दर पर ऋण दिये जाने के लिए न्यूनतम NRL 30 प्रतिशत पर निर्धारित किया गया। बैंकों से वसूल की जाने वाली ब्याज की अधिकतम दर 9 प्रतिशत से बढ़ाकर 10 प्रतिशत कर दी गई, उस समय बैंक दर भी 5 प्रतिशत से बढ़कर 6 प्रतिशत हो गई थी।

सुधार– अक्टूबर 1966 में इस व्यवस्था में महत्वपूर्ण सुधार किये गये। बैंक दर पर ऋण लेने के लिए न्यूनतम छत्स 30 प्रतिशत ही रखा गया, परन्तु बैंकों को एक और सुविधा प्रदान की गई। शिथिल काल के अन्त में बैंकों को बैंक दर पर के छत्स 10 प्रतिशत के बराबर और अतिरिक्त ऋण लेने की सुविधा दी गई। इस प्रकार बैंक अपनी मांग और समय दायित्व (Demand and Time Liabilities) का लगभग 3.85 प्रतिशत अथवा 140 करोड़ रुपये का ऋण बैंक दर पर ले सकते हैं। इसके ऊपर यदि ऋण लिया जायेगा तो उस पर ब्याज 20 प्रतिशत समान दर (Flat Rate) पर लिया जायेगा। नई व्यवस्था पुरानी व्यवस्था से इस आधार पर भिन्न हुई कि नई व्यवस्था में ऊँची दर केवल अतिरिक्त ऋण पर ही वसूल की जायेगी सम्पूर्ण ऋण पर नहीं। परन्तु दोनों व्यवस्थाओं का यह उद्देश्य रहा है कि बैंक सरलता से रिजर्व बैंक के पास ऋण लेने के लिए न पहुंचे। इस उद्देश्य की प्राप्ति, ब्याज की दर की सहायता से प्राप्त किया गया।

साख को नियन्त्रित करने के लिए रिजर्व बैंक ने बैंकों को दिये जाने वाले ऋणों की लागत को और अधिक बढ़ा दिया है। 29 जनवरी 1971 से ब्याज की दण्डस्वरूप दर को निर्धारित करने के लिए न्यूनतम NRL 34 प्रतिशत निर्धारित किया गया है। 1973 में NRL 40 प्रतिशत कर दी गई। 29 अक्टूबर 1974 की साख नीति के अनुसार रिजर्व बैंक द्वारा बैंक दर पर ऋण प्रदान करने के लिये 28 दिसम्बर 1974 से NRL40 से घटा कर 39 प्रतिशत कर दिया गया है। इस प्रकार विकासशील अर्थव्यवस्था में जिसमें आर्थिक उतार–चढ़ाव आना आवश्यक रहता है, दिन प्रतिदिन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये रिजर्व बैंक लचीली तथा विभेदक ब्याज दर नीति का अनुसरण करता रहा है तथा इसके भविष्य में भी जारी रहने की संभावना है।

मौद्रिक नीति का मूल्यांकन– इस बात का पहले वर्णन हो चुका है कि भारतीय मौद्रिक नीति का उद्देश्य मूल्यों में स्थायित्व रखते हुए पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत तीव्र गति से आर्थिक विकास प्राप्त करना है। इस विचार को दृष्टि में रखते हुए हमारी मौद्रिक नीति का उद्देश्य पूर्णतया प्राप्त होता दिखाई नहीं देता, क्योंकि तीसरी पंचवर्षीय योजना में वास्तविक आय में वृद्धि केवल 13 प्रतिशत से हुई जबकि वस्तुओं का थोक मूल्य सूचक अंक में 32 प्रतिशत से वृद्धि हुई।

ASVS Society Reg. No. 561/2013-14

दूसरी पंचवर्षीय योजना में थोक मूल्य सूचक अंक में 35 प्रतिशत की वृद्धि पहले ही हो चुकी थी। आशा तो यह की गई थी कि प्रत्येक वर्ष वास्तविक आय में वृद्धि औसतन 5 प्रतिशत से होगी परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं हुआ। इसके विपरीत मौद्रिक विस्तार बहुत अधिक हुआ। तीसरी योजना काल में जनता के मध्य मुद्रा की पूर्ति, यदि समय (Time Deposits) जमा को सम्मिलित कर लिया जाये, 63 प्रतिशत से भी अधिक बढ़ी है, तीसरे पंचवर्षीय योजना की अवधि में मजदूरों के जीवन–निर्वाह सम्बन्धी निर्देशांक में भी लगभग 40 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इन सब बातों से स्पष्ट है कि रहन–सहन की लागत पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ गई है।

इस काल में भुगतान सन्तुलन की स्थिति भी शोचनीय रही है। निर्यातों में कोई प्रशंसनीय बृद्धि दृष्टिगोचर नहीं हुई। जून 1966 में भारतीय रुपये का 36.5 प्रतिशत से अवमूल्यन भी मौद्रिक नीति/राजकोषीय नीति की अपर्याप्त सफलता का घोतक है। यह कहना भी पूर्णतया उचित न होगा कि तीसरी पंचवर्षीय योजना काल में केवल मुद्रा–स्फीति ही हुई और पर्याप्त आर्थिक विकास नहीं हुआ है। मुद्रा–स्फीति की दशायें कुछ बाह्य कारणों द्वारा भी उत्पन्न हुई जिसमें चीन का आक्रमण और पाकिस्तान से कलह इत्यादि भी मुद्रा–स्फीति की दशाओं को प्रोत्साहित करने के लिए उत्तरदायी है। निरन्तर दो वर्षों तक मानसून की असफलता के कारण कृषि उत्पादन भी घटा है। इमें यह स्मरण रखना चाहिए कि भारत की 50 प्रतिशत राष्ट्रीय आय केवल कृषि उत्पत्ति से प्राप्त होती है।

मूल्य में निरन्तर वृद्धि होने के कारण कुछ व्यक्तियों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि हमारी मौद्रिक नीति प्रभावहीन रही है। परन्तु इस सन्दर्भ में हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि सरकार की राजकोषीय क्रियाओं द्वारा जो मुद्रा–स्फीतीय शक्तियॉ उत्पन्न होती हैं मौद्रिक नीति उनको रोकने में निर्णायक घटक के रूप में कदापि कार्य नहीं कर सकती। यह न उचित ही होगा और न सम्भव ही कि राजकोषीय नीति द्वारा उत्पन्न हुए समघात को मौद्रिक नीति द्वारा उनको प्रभावहीन किया जाये। भारतीय केन्द्रीय बैंक ने अपनी नीति का पालन करते समय "नियन्त्रित विस्तार" का अवलोकन किया है। आर्थिक विकास के लिए मुद्रा की पूर्ति एवं बैंकों द्वारा साख का विस्तार आवश्यक होता है, परन्तु केन्द्रीय बैंक को यहां थोड़ा सतर्क रहने की आवश्यकता होती है।

अतः स्पष्ट है, कि भारत में रिजर्व बैंक ने मौद्रिक नीति को यथा संभव राष्ट्र की आवश्यकताओं के अनुरूप ढ़ालने का प्रयास किया है जिसमें उसे आंशिक सफलता भी प्राप्त हुई है यद्यपि इस दौरान अनेकों बार गलत कदम अथवा सीमित कदम उठाने से कटु अनुभव भी प्राप्त हुये। कई बार मौद्रिक नीति पर राजकोषीय नीति का अवांछनीय प्रभाव भी देखा गया। स्पष्ट रूप से 22 वर्षों के इस काल में रिजर्व बैंक पूर्णतः निष्पक्ष नहीं रह सका। बैंकिंग प्रणाली के विस्तार व ऋण प्रबंधन जैसे शुद्ध मौद्रिक उत्तरदायित्वों को निभाने में उसकी सफलता प्रशंसनीय है। साख नियंत्रण के क्षेत्र में भी उसका कार्य आशातीत रहा है। रिजर्व बैंक ने ब्याज दर पर काफी विश्वास व आशा के साथ प्रयुक्त किया है। यह अनुभव सुखद नहीं रहा। सामान्यतः विकासशील देशों में ब्याज की दर अपेक्षित रूप से कार्य नही करती है। इन राष्ट्रों के लिए साख नियंत्रण के अनेक अन्य तरीके हैं जो ब्याज–दर के उद्देश्यों को अधिक सहायता से प्राप्त कर सकते हैं। मुद्रा की मांग को समझने में या तो पूर्णतः असफल रहा है या उस पर सदैव तीव्र राजनैतिक दबाव छाया रहा जिसके परिणामस्वरूप आज तक देश में मुद्रा की पूर्ति बढ़ती रही व मूल्य स्तर दौड़ता रहा। परन्तु कुल मिला कर मौद्रिक नीति का विकास संतोषप्रद ढंग से तथा अर्थव्यवस्था की आवश्यकता के अनुसार होता रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. R.P. Kent: Maney and Banking.
2. F.A. Hayek: Profits, Interest and Investments.
3. G.P. Gupta: The Reserve Bank of India and Monetary Management.
4. Crother: Outline of Money.
5. Committee of the A.E.E.: The problem of Economic Instability, A.E.R., Sept. 1950.
6. C.R. Whittlesey, Bertil Ohlin: Over full employment, printed in readings in money and Banking.
7. M.H. De Kock: Central Bakning, 3rd Ed.
8. Vera Smith: Rational of central Banking.
9. G. Howterey: The artop central banking (London in 1938)
10. W.A. Show: Theory and principles of Central Banking.
11. H.P. Willis: Theory and principles of Central Banking

*****

ASVS Society Reg. No. 561/2013-14